भारतीय संगीत में गुरु-शिष्य परंपरा

Dr. Prem Sagar
Associate Professor and HOD
Vocal Music (HMV)

भू-लोक को प्रकाशित करने में जो स्थान सूर्य का है, जीवन को ज्ञान से आलोकित करने में वही स्थान गुरु का है। गुरु में सागर की गहराई, आकाश की ऊँचाई और धरती की विराटता है। गुरु एक महान उपाधि है जिसका अधिकारी कोई विरला व्यक्ति ही होता है। ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा, गुरु सान्निध्य से प्राप्त ज्ञान, सतत् साधना, परोपकार, समर्पण, त्याग और वचनबद्धता जैसे उच्च मानवीय गुण सच्चे गुरु के लिए अपेक्षित है। गुरु के गुणों को शब्दों की सीमा में बाँधना सम्भव नहीं, गुरु की महानता शब्दातीत है। गुरु में जीवन को सवाँरने और जीवन का कायाकल्प करने की क्षमता होती है, गुरु विद्यादान देकर जीवन को जीने योग्य तथा सार्थक बनाने हेतु दृष्टि दे देता है। प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु के शब्दों में-

“शिक्षक जो कि विद्यार्थियों को जीवन जीने का ज्ञान देता है, जीविकोपार्जन के लिए हुनर सिखाता है, उसका स्थान माता-पिता से भी अधिक सम्माननीय है क्योंकि माता-पिता तो जन्म देते है किन्तु शिक्षक जीवन को सही ढंग से जीने की विधि सिखाता है। ”[1](भावानुवाद)

शिष्य तैयार करना तथा उन्हें सफलता के मुकाम पर पहुँचाना बहुत दुरुह कार्य है। जिस तरह माता अपने नन्हें शिशु की देखभाल करती है, उसकी प्रत्येक साँस से माता की ममता और चिंता जुड़ी रहती है, उसी प्रकार सच्चा गुरु अपने शिष्य के सर्वविध हित से जुड़ा है। जिस प्रकार पिता अपना विकास अपने पुत्र के क्रियाकलापों में देखता है, उसी प्रकार गुरु अपने शिष्य की उन्नति में हर्ष और सुख का अनुभव करता है। ‘भारतीय संगीत की गुरु शिष्य परम्परा’ विषय का प्रतिपादन करने हेतु गुरु की उपमा तथा उपाधि से सम्बन्धित दर्शन-शास्त्र, व्याकरण-शास्त्र और भारतीय शास्त्रीय संगीत की उच्च गुरु-शिष्य परम्परा के संदर्भ में विचार-चिन्तन प्रस्तुत करना अभीष्ट प्रतीत होता है । इससे संगीत अध्ययन से जुड़े हुए लोगों को शिष्य और गुरु दोनों रुप में अपने आपको पोषित करने की दिशा मिलेगी।

1.1 .भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान तथा तत् सम्बन्धी चिन्तन

भारतीय संस्कृति के संदर्भ में यह बात सुनिश्चित है कि अध्यात्म, दर्शन, योग, चिकित्सा, साहित्य, कला तथा विज्ञान आदि जीवन का कोई भी क्षेत्र हो, सद्गुरु की भूमिका अपेक्षित और महान् है। इतिहास बताता है कि गुरु वशिष्ठ को पाकर श्री राम, अष्टावक्र को पाकर राजा जनक, गुरु संदीपनी को पाकर श्री कृष्ण, गुरु नानक देव को पाकर अंगद देव, बाबा हरिदास को पाकर तानसेन, स्वामी विरजानंद को पाकर दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस को पाकर विवेकाननंद, बाबा अलाऊद्दीन खाँ को पाकर रविशंकर धन्य हो गये महान् हो गये और स्वयं गुरु हो गये। सच तो यह है गुरु की महिमा अपरम्पार है-

“गुरु बिनु भवनिधि तरह न कोई।

जो बिरंचि संकर सम होई। । ”[2]

अर्थात कोई भी व्यक्ति गुरु के मार्गदर्शन के बिना अपने जीवन में सफल नहीं हो सकता, चाहे वह ब्रह्मा और महेश जैसे महान् देवताओं के समान ही हो। अत:गुरु का सान्निध्य ऋषि-मुनियों के लिए भी आवश्यक है। गुरु एक ऐसा विद्वान बुद्धिजीवी व्यक्तित्व है जो उपलब्ध ज्ञान को पहले आत्मसात् करता है, फिर प्राप्त ज्ञान और स्वचिन्तन के फलस्वरुप उपजे ज्ञान-सार को अपने शिष्यों को ह्रदयंगम करवाता है। शिष्यों को संस्कार प्रदान करके उनकी जीवन-शैली को परिष्कृत करने वाले महानुभाव को भारतीय संस्कृति में गुरु अथवा आचार्य की उपाधि दी गई है। भारतीय संस्कृति की प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा के संदर्भ में डॉ.निवेदिता सिंह लिखती है-

“प्राचीन भारत में संगीत ही नहीं अपितु अध्ययन की सभी शाखाओं के शिक्षण-प्रशिक्षण का यज्ञ गुरु-शिष्य प्रणाली द्वारा सम्पन्न किया जाता था। साहित्य, कला, धर्म, दर्शन, राजनीति-शास्त्र और औषधि-विज्ञान आदि-आदि अध्ययन की सभी विधाओं का ज्ञान गुरु-शिष्य प्रणाली द्वारा प्रदान किया जाता था। ”[3] (भावानुवाद)

गुरु केवल ज्ञान-दान ही नहीं करते अपितु शिष्य की चेतना को जागृत कर देते है। ज्ञान की गरिमा का बोध करवाकर ज्ञान-पिपासा को तीव्र कर देते है। जिसके फलस्वरुप शिष्य अपने गुरु से तो ज्ञान लेता ही है, चेतना जागृत होने पर आजीवन ज्ञान-प्राप्ति एवं आत्मशुद्धि के

लिए तत्पर और प्रयन्तशील हो जाता है। अत:गुरु की महिमा और उसकी भूमिका अपरम्पार है।

1.2 गुरु –स्तुति से सम्बन्धित कतिपय ऋषि-वाक्य

जीवन में गुरु की महत्वपूर्ण भूमिका का अनुभव करते हुए दार्शनिकों ने तत्सम्बन्धी अपने अमूल्य विचार अंकित किये हैं। पद्मपुराण में गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है-

“दिवा प्रकाशक:सूर्य:शशी रात्रौ प्रकाशक:।

गृहप्रकाशको दीपस्तमोनाशकर:सदा। ।

रात्रो दिवा गृहस्यान्ते गुरु: शिष्यं सदैव हि।

अज्ञानास्यं तमस्तस्य गुरु: सर्वे प्रणाशयेत्।

तस्माद गुरु: पर तीर्थे शिष्याणामवनीयते। ”[4]

अर्थात सूर्य दिन में प्रकाश करता है, चन्द्रमा रात्रि में और दीपक घर में उजाला करता है तथा सदा घर के अंधेरे का नाश करता है परन्तु गुरु अपने शिष्य के ह्रदय में रात-दिन सदा ही प्रकाश फैलाता रहता है। वह शिष्य के अज्ञान रुपी अंधकार का नाश कर देता है।

गुरु साहिबान तथा अन्य सन्त-भक्तों को दिव्य वाणी के महान संग्रह ‘गुरु ग्रंथ साहिब’ में गुरु महिमा से सम्बन्धित अनेक पद संकलित है। उनमें से एक यहाँ उद्धृत किया जा रहा है-

“जे सउ चंदा उगवहि, सूरज चड़हि हजार।

एते चानण होंदिआं, गुरु बिनु घोर अंधार। ”[5]

नानक ज्योति के दूसरे अवतार श्री गुरु अंगद देव जी प्रस्तुत श्लोक में गुरु की महिमा का बड़ा सुन्दर चित्रण करते हुए कहते हैं कि चाहे सौ चन्द्रमा उदय हो जायें, हजार सूर्य प्रकाशमान हो जायें, इन सबके रहते हुए भी गुरु के बिना जीवन में अंधकार ही रहता है भावार्थ यह है

कि सूर्य, चन्द्रमा तो बाह्य जगत को प्रकाशित करते है, आंतरिक ज्ञान तो गुरु के सान्निध्य से ही प्राप्त हो सकता है।

उपरोक्त श्लोक का अर्थ विद्वज्जन इस तरह भी बताते है कि सूर्य, चाँद तो शास्त्रों के प्रतीक है। कोई व्यक्ति शास्त्रों का अध्ययन करके ज्ञानवान् तो हो सकता है, परन्तु विवेक-बुद्धि गुरु के सान्निध्य में गूढ़ तथ्यों को आत्मसात् करके ही प्राप्त की जा सकती है। रामचरितमानस के रचयिता महाकवि तुलसीदास जी ने सद्गुरु की महिमा में अति सुन्दर चौपाईयों और सोरठों का उच्चारण किया है, उनमें से एक यहाँ द्रष्टव्य है-

“कृपा सिन्धु नर रुप हरि, बंदऊँ गुरु पद कंज।

जासु वचन रवि कर निकर, महामोह तम पुंज। । ”[6]

अर्थात् मैं गुरुदेव के कमल स्वरुपी चरणों की वंदना करता हूँ जो दया के समुद्र और मनुष्य रुप में श्री हरि ही हैं और जिनका वचन सदा अज्ञान रुपी घने अंधकार को नाश करने के निमित्त सूर्य के किरणों का समूह है।

दुनियाँ को सच्चाई और सादगी का ज्ञान करवाने वाले युगप्रवर्तक श्री गुरु नानक देव जी गुरु की महिमा इस प्रकार गाते हैं-

“कुंभे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभु न होइ।

गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआन न होइ। ”[7]

अर्थात् जल को घड़े में ही संचित करके रखा जा सकता है, बिना पात्र के जल को बांध कर रखना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मन का नियंत्रण ज्ञान से ही हो सकता है और ज्ञान गुरु के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। भावार्थ यह है कि जीवन को सुचारु ढंग से संचालित करने के लिए ज्ञान आवश्यक है और ज्ञान प्राप्ति के लिए सद्गुरु का सान्निध्य परम आवश्यक है। गुरु की महिमा में उच्चारित सुपरिचित श्लोक यहाँ द्रष्टव्य है-

“गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर:।

गुरुर्साक्षात् परब्रह्मम, तस्मै श्री गुरवे नम:। ”[8]

सृष्टि की सृजना, पोषण तथा विलय करने वाली तीन महान् शक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश मानी गयी है। उपरोक्त श्लोक में इन तीनों शक्तियों का समावेश गुरु में दिखाया गया है। भावार्थ यह है कि गुरु के पास वह सिद्धि है, जो परमतत्त्व परमात्मा से व्यक्ति को एकाकार कर देती है, जिसके फलस्वरुप यह तीनों शक्तियाँ गुरु के द्वारा साधक के अंदर साकार हो जाती है। यही कारण है कि गुरु को साक्षात् परम ब्रह्म कहा गया है। इसलिए गुरु को बारम्बार नमस्कार है। उपरोक्त ऋषि वाक्यों में वर्णित गुरु महिमा को सारांश रुप में इस तरह व्यक्त किया जा सकता है-वास्तव में परमचेतना, परमतत्त्व सर्वत्र प्रवाहित हो रहा है। यदि उस सत्ता से हमारा तारतम्य स्थापित हो जाता है तो सारी शक्तियाँ मनुष्य के नियंत्रण में आ जाती है। सद्गुरु(सच के साथ एकाकारता रखने वाला) परमचेतना से तारतम्य स्थापित करने में हमारा मार्गदर्शन करता है।

श्री गुरु नानक देव जी ने वाहे गुरु गुरुमंत्र देकर मनुष्य को यह बोध करवाने का प्रयत्न किया कि गुरु की सर्वदा सर्वत्र जय है तथा वह परमचेतना सब गुरुओं की भी गुरु है अर्थात् हम अपने अंदर प्रवाहमान हो रहे परमतत्त्व से अपना तारगम्य स्थापित करके रखें, अपने भीतर के गुरु को सुनते रहे, साधकों की संगत में ज्ञानार्जन करते रहे तो साक्षात् परमब्रह्म का संग हमें प्राप्त रहेगा। हम जीवन में सन्मार्ग पर चलते हुए अपेक्षित शुभ कर्म करेंगे, फलत: सुख और संतोष की प्राप्ति होगी।

गुरु का महत्त्व अध्यात्म या केवल किसी विशेष क्षेत्र में नहीं, अपितु जीवन के सभी पहलुओं में पल-पल गुरु तत्त्व से जुड़कर विचरण करना सुखदायक सिद्ध होता है। गुरु तत्व से जुड़े रहने के लिए साधक लोगों का संग आवश्यक है। सच्चाई, ईमानदारी, साधना, चिन्तन तथा जीवन के अन्य सिद्धांत ये सब गुरु रुप ही है, इनकी प्राप्ति तथा आदत में इनका शामिल होना साधकों की संगत से ही सम्भव होता है। इसलिए कबीर साहिब ने गुरु को गोविंद से भी ऊँचा स्थान दिया है। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाये तो गुरु अर्थात् जागरुकता को प्राप्त करना, अपनी प्राकृतिक शक्तियों को जागृत करना ही गोविंद को पाना है।

1.2 व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से गुरु शब्द व्युत्पत्ति तथा तत्सम्बन्धि चिन्तन

भाषा विज्ञान की दृष्टि से गुरु शब्द की व्युत्पत्ति दो शब्दों के योग से हुई है-गु+रु, 'गु' का अर्थ है अंधकार और 'रु' का अर्थ दूर करना।

“गु शब्दस्तु अंधकार: रु शब्दस्तुन्निरोधक:।

तयोर्ऐक्यम् परब्रह्म, गुरुरित्यभिधीयते। । ”[9]

अर्थात् जो अज्ञान रुपी अन्धकार को विनष्ट कर ज्ञान रुपी प्रकाश करता है, वही गुरु है। व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से गुरु शब्द सम्बन्धी अलग-अलग शब्द कोषों में दिये गये अर्थों को उद्धत किया जा रहा है।

पद्मचन्द्रकोश[10]

गुरु वि.(गृ+कु, उत्वम्) का अर्थ है-सींचना, तर करना, बतलाना, वर्णन करना, पढ़ाना इत्यादि। इसी कोष में गुरु शब्द के अर्थ इस प्रकार बताये गये हैं-गुरु, महत्त्वपूर्ण, प्रशस्त, धार्मिक अथवा आध्यात्मिक गुरु, आदरणीय या पूज्य, किसी नये सिद्धांत का व्याख्याता या प्रवर्त्तक इत्यादि।

हिन्दी विश्वकोष[11]

गुरु, सम्प्रदाय प्रवर्त्तक, धर्मोपदेशक, किसी कला में निष्णात् व्यक्ति, शान्त-दान्त, कुलीन, विनीत, शुद्धवेषी, शुद्धाचारी, सुप्रतिष्ठित, पवित्र, दक्ष, आश्रम व्यवस्था को मानने वाला, ध्यान में लीन, मंत्र-तंत्र का ज्ञाता, निग्रह और अनुग्रह में समर्थ व्यक्ति।

SKT.-ENG.DICTIONARY[12]

‘GURU’-great, large, high in degree, important, valuable, respectable, spiritual, parent or preceptor from whom a youth receives the initiatory mantra or prayer who instructs up to that of investiture which is performed by the acharyajan.

संस्कृत-हिन्दी टीका द्वयोपेतम्[13]

य आतृणन्त्यवितधेन कर्णाव दु:खं कुर्वन्नमृतं सम्प्रयच्छन्।

तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न दुहयेत् कतमच्चनाह। ।

गुरु वह है जो सत्य वेद ज्ञान से जरा भी कष्ट न पहुँचाता हुआ अर्थात् जो विनम्र हो, मोक्ष प्राप्ति हेतु ज्ञान को देता हुआ दोनों कानों को खोल देता है और माता-पिता के समान कभी द्रोह न करने योग्य होता है।

गुरुशबद रतनाकर-महान् कोष[14](ENCYCLOPEDIA OF SIKH LITERATURE)

गुरु(सं-धर्म उपदेशक, धर्म का आचार्य) नानक ज्योति के छठे अवतार श्री गुरु हरगोबिंद साहिब का हवाला देते हुये भाई काह्न सिंह नाभा ने गुरु के चार प्रकार बताये है-

क.भृंगी गुरु:-भृंग वास्तव में एक कीट है जो अपनी जाति के कीट पतंगों को स्पर्श से अपने जैसा बना लेता है। परंतु अन्य वर्गों के कीटों को नहीं। अत:भृंगी गुरु वह गुरु है जो कुछ सीमत लोगों को अपना गुण दे सकता है।

ख.वामन चंदन गुरु:-वामन चंदन हिमालय में पाया जाने वाला एक ऐसा वृक्ष है जिसकी ऊँचाई बावन हाथ की होती है। इसकी विशेषता है कि यह किसी खास ऋतु वृक्ष में अपनी आस-पास की वनस्पति को सुवासित कर देता है, किन्तु प्रत्येक ऋतु में नहीं और यह बाँस के वृक्ष को कभी भी सुवासित नहीं कर सकता, अत: वामन चंदन गुरु को पूर्ण गुरु की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

ग.पारस गुरु-जैसा कि सर्वविदित है पारस एक ऐसी दुर्लभ धातु है जो अपने स्पर्श से किसी भी धातु को सोने में बदल देती है परन्तु किसी भी धातु को अपने जैसा अर्थात् पारस नहीं बना सकती अर्थात् पारस गुरु ऐसा गुरु है जो शिष्य को गुणवान तो बना सकता है परन्तु अपने तुल्य नहीं बना सकता।

घ.दीपक गुरु:-दीपक की यह विशेषता है कि वह एक-एक करके सभी प्रकाशहीन दीपों को ज्योतिर्मान कर देता है, जो आगे भी असंख्य बेनूर चिरागों को रोशन कर सकते हैं अत: दीपक गुरु ही सर्वश्रेष्ठ है।

1.2.1 गुरु के पर्यायवाची शब्द

मुरशद, उस्ताद, रहिबर, आचार्य, शिक्षक ये सभी गुरु के पर्यायवाची है। गुरु और मुरशद विशेष रुप से जीवन के आध्यात्मिक पक्ष से जुड़े हुए शब्द है। 'उस्ताद' शब्द किसी हुनर(कला) की तालीम और तरबियत(गहन संस्कार) देने वाले व्यक्ति विशेष को कहने की

परम्परा है। संगीत के संदर्भ में ये शब्द मुगल समय की घरानेदारी परम्परा से जुड़ा हुआ है। 'आचार्य' शब्द भारत में प्राचीन काल से 'विद्या-क्षेत्र' से सम्बद्ध रहा है। भारतीय संस्कृति में गुरु पद के लिए प्रयुक्त होने वाला दूसरा शब्द है आचार्य। आचार्य शब्द चर्[15] धातु से बना है जिसका अर्थ है-व्यवहार अथवा आचरण।

'आचरम् गृह्णाति इति आचार्य:' अर्थात जो आचरण अथवा व्यवहार में दक्ष बनाये वही आचार्य है क्योंकि आचार्य पूरे समाज को आचार संहिता में प्रशिक्षित करता है, इसलिए वह स्वयं एक आदर्श नैतिक जीवन व्यतीत करता है ताकि वह अपने अनुयायिओं के लिए अनुकरणीय बन सके।

मानक अग्रेंजी-हिन्दी-कोष[16]के अनुसार-Teacher-सं.1.शिक्षक*(प्र.भी), अध्यापक*(मा.2 भी), मुदर्रिस;2.उपदेशक, पीर, उस्ताद।

शब्दकोष की दृष्टि से तो शिक्षक और अध्यापक गुरु शब्द के ही समानार्थी है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से दोनों की कार्यशैली और फलस्वरुप होने वाली गुणवत्ता में अंतर दिखाई देता है। अध्यापक अथवा शिक्षक स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय में रहकर वहाँ की व्यवस्था के अनुसार अपना कार्य करता है, जबकि गुरु निजी मान्यता अनुसार केवल और केवल गुणवत्ता के उद्देश्य से प्रशिक्षण प्रदान करता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक अथवा टीचर को गुरु होने का ध्येय अपने सामने रखना चाहिए। इसलिए जहाँ उसे स्वसाधना को समृद्ध करना है, स्वज्ञान को पोषित करना है वहीं नैतिक दृष्टि से अपने आप को समृद्ध करते हुए गुरु पद की कर्त्तव्य परायणता और वचन बद्धता को भी अपने चरित्र में समाहित करना है।

प्रस्तुत शोध-पत्र 'भारतीय संगीत की गुरु –शिष्य-परम्परा' विषय पर लिखा जा रहा है इसलिए दर्शन शास्त्र और व्याकरण शास्त्र के प्रकाश में गुरु की उपाधि तथा उसके बहुविध महत्त्व के अध्ययन के बाद भारतीय शास्त्रीय संगीत की गुरु-शिष्य-परम्परा का उल्लेख संदर्भ –संगत है अत:भारतीय शास्त्रीय संगीत की गुरु-शिष्य-परम्परा का संक्षिप्त उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है।

2.भारतीय शास्त्रीय संगीत की गुरु शिष्य परम्परा की पृष्ठभूमि तथा विलक्षणता

भारतवर्ष की गुरु-शिष्य –परम्परा के अन्तर्गत सम्बन्धित विषय में निष्णात गुरु-सच्ची निष्ठा और वचनबद्धता से सुपात्र शिष्यों को विद्यादान देते थे। सुपात्र शिष्य भी गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान को पूरी आत्मसात् करते थे। अध्ययन-अध्यापन की यह प्रणाली वाचन और श्रवण की विलक्षण विशेषता से सम्पन्न होती थी जिसे आमतौर पर गुरु-शिष्य प्रणाली की मौखिक परम्परा के रुप में जाना जाता है। वाचन और श्रवण की विलक्षण विधि(features of oral and aural tradition)प्राचीन गुरु-शिष्य प्रणाली में ज्ञान-संचार का मुख्य माध्यम अथवा साधन रही। गुरु-मुख से निस्सृत होने वाले गूढ़-ज्ञान रहस्यों को जिज्ञासु और पिपासु शिष्य एकाग्रचित श्रवण द्वारा ह्दयंगम करते थे। विद्यादान देने वाले मनीषियों की यह सत्यपरख अनुभव सिद्ध अवधारणा थी कि गुरु द्वारा उच्चरित वाक्यों का निरन्तर श्रवण शिष्य के ह्रदय में ज्ञान को स्थायित्व प्रदान करता है। प्रस्तुत विचार बिन्दु की पुष्टि हेतु निम्नलिखित उद्धरण संदर्भ –संगत है-

“विषय के बारम्बार श्रवण से प्रज्ञा जागृत हो जाती है, पाठ्यवस्तु को ह्रदयंगम कराती है। प्रज्ञा बल से पाठ्य विषय के सम्बन्ध में अधिकाधिक मनोयोग उत्पन्न होता है और अविरत मनोयोग में विद्या आत्मसात् हो जाती है। ”[17]

वाचन और श्रवण पर आधारित अध्ययन-अध्यापन की यह मौखिक परम्परा वैसे तो विद्याध्ययन की सभी शाखाओं से सक्रिय रही, परन्तु भाव जन्य नाद और गति अर्थात् स्वर और लय के सूक्ष्म तत्त्वों से निष्पन्न और सम्पन्न संगीत कला की तरबियत(गहन प्रशिक्षण)हेतु ऊपरवर्णित वाचन-श्रवण पर अवलम्बित गुरु-शिष्य प्रणाली सर्वाधिक अनुकूल तथा फलदायक सिद्ध हुई।

“सदियों से भारतीय संगीत कला गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से ही जीवित रही है। अपने शिष्य को संगीत कला की बारीकियाँ सिखाने और आत्मसात् करवाने के लिए गुरु लम्बे समय तक साधना करता है। जिसमें शिष्य कठोर अभ्यास द्वारा निखार पैदा करके कला का लालित्यपूर्ण रुप प्रस्तुत करता है। अत: भारतीय-संगीत परम्परा में गुरु-शिष्य सम्बन्ध को पिता-पुत्र के नाते से भी ऊपर सर्वोच्च स्थान दिया गया है। ”[18](भावानुवाद)

संगीत ऐसी गुरुमुखी विद्या है जिसमें स्वर, लय, बन्दिश, आलाप, तान, गायन-शैली, रचनात्मक-सौन्दर्य-बोध आदि सब कुछ प्रत्यक्ष गुरु मुख से सुनकर आत्मसात् किया जाता है

तथा सीना-ब-सीना तालीम द्वारा तरबियत होती है, इस कला में गुरु का महत्त्व शब्दातीत है।

“गान विद्या मूलत:मौखिक विद्या है और उसका यथार्थ ज्ञान अधिकारी गुरु के मुख से सम्भव है तथापि गान-शास्त्र के बिना वह अपूर्ण तथा एकांगी सिद्ध.....संगीत का अध्ययन केवल ग्रंथ के आश्रय से अभीष्ट नहीं। स्वर-शास्त्र के प्रायोगिक पक्ष के परिज्ञान कि लिए गुरु सन्निधि अत्यावश्यक है। गुरु की पारम्परिक शिक्षा के बिना केवल ग्रंथ मात्र से स्वर-शास्त्र सीखने वाला व्यक्ति विद्त्सभा में उसी प्रकार शोभाविहीन सिद्ध होता है जैसे स्त्री का जार पति। ”[19]

संगीत गुरु, शिष्य को केवल जानकारी ही प्रदान नहीं करता अपितु प्रदत्त जानकारी को शिष्य की आदत में ढालता है और उसकी अन्तर्दृष्टि को जागृत कर देता है ताकि शिष्य स्वयं रचना करने के योग्य हो जाये।

“नाद और गति अर्थात् स्वर और लय के सूक्ष्म तत्त्वों से निष्पन्न और सम्पन्न संगीत कला पूर्णरुपेण गुरु आश्रित अथवा गुरुमुखी विद्या है। इस नाते इस कला को सीखने-सिखाने में गुरु की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गुरु कला की परम्परा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढी तक पहुँचाने में अद्वितीय कड़ी का काम करता है, गुरु ज्ञान का वाहक है, पोषक तथा सम्प्रेषक है। इसलिए गुरु का स्थान सर्वोच्च आदर का पात्र है। सीखने-सिखाने की यह मौखिक परम्परा, ज्ञान परम्परा की सशक्त विधि है जो कि सम्बन्धित विषय की जानकारी को ज्ञान में तथा ज्ञान को अन्तर्दृष्टि का रुप प्रदान करती है। ”[20](भावानुवाद)

भारतवर्ष एक ऐसा देश है जिसमें संगीत कला और संगीत गुरुओं की समृद्ध परम्परा रही है। बाबा हरिदास, बाबा अलाऊद्दीन खाँ, पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे, उस्ताद रजब अली खाँ, पंडित भोलानाथ की भट्ट, उस्ताद विलायत हुसैन खाँ, पंडित जगन्नाथ बुआ पुरोहित, प्रो.लाल मणि मिश्र, पंडित विनयचन्द्र मौदगल्य, पंडित गोकुलोत्सव शंकर लाल जो मिश्र ‘सुभरंग’, पंडित लछमन दास, पंडित कुंज लाल, पंडित लछमन सिंह सीन आदि कुछ ऐसे नाम है जिन्होनें अपने जीवन में संगीत-गुरु की भूमिका निभाने के लिए तप-साधना की है, ये ऐसे व्यक्तित्व है जिनका जीवन चरित और नाम आज

भी संगीत साधना से जुड़े हुये लोगों को उच्च साधना और समर्पण की भावना की प्रेरणा देता है और सदियों तक देता रहेगा।

भारतीय संगीत की गुरु-शिष्य परम्परा की प्रशिक्षण प्रणाली को आत्मसात् करने से यह तथ्य भली-भांति उजागर हो जाता है कि समर्थ और समर्पित गुरु शिष्यों के चेतन और अवचेतन मन में राग, बंदिश और गायकी की बारीकियों को पूर्णत:स्थापित करने के लिए नानाविधि प्रयत्न करते है। सच्चे गुरु की भूमिका में कला-मर्म को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का यज्ञ बड़ी गरिमा से सम्पन्न करते है। इस संदर्भ में सिद्ध संगीत-गुरु एवं कुशल वाग्गेयकार पंडित गनेश प्रसाद जी शर्मा 'नादरस' का निम्नलिखित कथन न्याय संगत है,

"हमारा शास्त्रीय संगीत पारम्परिक है, परन्तु कभी पुराना नहीं होता, नित्य नूतन रहता है। इसकी जड़ें परम्परा में है, परन्तु तना, पत्ते, फूल-फल नित्य-प्रति जीवन से नई रंगत शालीनतापूर्वक अर्जित करते रहते है और सदैव जीवन को सुरभित रखते है। मेरे पास सौ वर्ष का अनुभव है, इसका अभिप्राय यह नहीं कि मेरी आयु सौ वर्ष की है तात्पर्य यह है कि मैंने तीन पीढ़ियों के ज्ञान-अनुभव से अपने आप को वाकिफ रखा है अर्थात्-मेरे गुरुजनों की पीढ़ी, मेरी खुद की पीढ़ी तथा आज की पीढ़ी। इन तीनों के जोड़ से जो अनुभव मेरे पास संचित है उसे मैं अपने शिष्यों तक पहुँचाने का दायित्व पूरी गम्भीरता से निभाते हेतु हरदम प्रयत्नशील हूँ । पंडित जी का कहना है, "गुरु वहीं है जो शिष्य भी है और शिष्य भी सद्गुरु का। "[21]

पंडित जी के उपरोक्त कथन के सम्पोषण हेतु गुरुदेव रबीन्द्रनाथ ठाकुर के निम्नलिखित कथन को उद्धत करना न्याय संगत है,

"अध्यापन कार्य के यज्ञ को सच्चे अर्थों में सम्पन्न करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि अध्यापक अपनी अध्ययन प्रक्रिया को निरन्तर बनाए रखे, जिस तरह एक जलता हुआ प्रकाशमान दीपक ही किसी प्रकाशहीन दीये को जगमगा सकता है, उसी प्रकार स्व-अध्ययन की लौ को प्रचण्ड रखने वाला शिक्षक ही विद्यार्थियों को ज्ञानवान् बनाने में अपनी भूमिका निभा सकता है। "[22]

2.1 भारतीय संगीत परम्परा में शिष्य का स्थान

शिष्य गुरु की पहचान तथा उपलब्धि होते हैं। उनकी सफलता में गुरु का गौरव तथा कौशल परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति अथवा सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत परिवार में इस बात की विशेष तड़प रहती है कि योग्य संतान हो, जो कुल-परिवार की मर्यादा तथा सब प्रकार की सम्पत्ति की वारिस बन सके। यही स्थिति गुरु-शिष्य परम्परा में भी विद्यमान है। भारतीय गुरु-शिष्य परम्परा में गुरु-शिष्य के बीच पिता-पुत्र की घनिष्ठता और आत्मीयता का सम्बन्ध रहता है। जिस तरह आज्ञाकारी पुत्र, पिता का दायाँ हाथ बनके कुल-परिवार को उन्नत करता है, पिता अपने जीवन की सारी पूँजी को योग्य संतान के हाथों सौंपकर सुख-सुकून तथा निश्चिन्तता का अनुभव करता है, उसी प्रकार योग्य शिष्य भी जहाँ एक तरफ गुरु-परम्परा को सम्भालते है वहीं गुरु ऐसे शिष्यों के हाथों संचित ज्ञान कर निश्चिन्त और आश्वस्त हो जाता है कि उसकी कला साधना पल्लवित, पुष्पित और फलीभूत होगी।

जिस तरह एक पिता की हार्दिक कामना होती है कि उसकी संतान उससे भी आगे निकल जाये, उससे भी समृद्ध हो अर्थात् बेहतर स्थिति में हो, उसी प्रकार सच्ची गुरु-शिष्य –परम्परा में गुरु सदैव यही कामना करता है कि उसका शिष्य कला साधना के क्षेत्र में अपने गुरु से भी अधिक सिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त करे।

“भारतीय-संगीत परम्परा में गुरु-शिष्य सम्बन्ध को पिता-पुत्र के नाते से भी ऊपर सर्वोच्च स्थान दिया गया है। ”[23](भावानुवाद)

ऐसा अक्सर देखने को मिल जाता है कि शिष्य गुरु से बेहतर गाने बजाने लगता है, तो सच्चा गुरु इस में अपना विकास समझता है तथा प्रफुल्लित होता है। अत:जिस प्रकार शिष्यों को सद्गुरु का मिलना आवश्यक है उसी प्रकार गुरु को भी सच्चे शिष्यों का मिलना नितान्त आवश्यक है। कई बार यह देखा गया है कि स्थापित संगीत-गुरु स्वयं कुशल मंचीय कलाकार नहीं होते परन्तु अपने प्रशिक्षण-कौशल, निष्ठा तथा निश्चय से वे सुपात्र शिष्यों को मंचीय कलाकार बनाने में सफल हो जाते है, इसके विपरित कुछ ऐसे संगीतज्ञ जो कि स्वयं कुशल मंचीय कलाकार तो होते है परन्तु संगीत प्रशिक्षण के लिए वांछित समय और धैर्य आदि गुण कम होने की स्थिति में शिष्य निष्पादन का कार्य उतनी सफलता से सम्पन्न नहीं कर पाते, इस संदर्भ में एक तथ्य का उदघाटन सत्य को प्रकाशित करेगा कि समर्थ और सच्चे गुरु के लिए यह जरुरी नहीं कि वह बहुत अच्छा गवैया हो, गुरु सहज कण्ठित हो तो उसे अपने

शिष्य को सिखाना आसान होगा परन्तु इससे भी ज्यादा जरूरी यह है कि गुरु का ज्ञान सच्चा हो, अनुभव प्रौढ़ हो, समर्पण और त्याग की भावना सुदृढ़ हो तो गुरु, शिष्य-निष्पादन के यज्ञ में सफल हो सकता है। गुरु एक शिल्पी की तरह शिष्य के अन्तर्मन को तराशता है, तभी शिष्य सुघढ़ गवैया बन पाता है।

"भरताचार्य ने आचार्य के अनेक गुणों में एक गुण 'शिष्य-निष्पादन' बताया है। अच्छे शिष्य ही गुरु-परम्परा को वास्तविक रुप में सुरक्षित रखने में समर्थ होते है और ऐसे शिष्य को तैयार करने की क्षमता अच्छे आचार्य की अपेक्षा रखती है। विद्यादान करने वाले गुरु और प्रतिभाशाली शिष्य होने पर ही 'सम्प्रदाय' या 'घराने' का जन्म होता है। "[24]

3.भारतीय संगीत में गुरु-शिष्य परम्परा की व्यापकता

नि:संदेह भारतीय शास्त्रीय संगीत में गुरु-शिष्य परम्परा बहुत दृढ़ और सनातन है परन्तु शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ लोक संगीत, भक्ति संगीत, चित्रपट संगीत, नाट्य संगीत तथा सुगम संगीत के अन्य प्रकारों जैसे की गीत गजल आदि सब में गुरु-शिष्य परम्परा के तत्व किसी न किसी रुप में सक्रिय रहते है। विशेष रुप से लोक संगीत में तो परम्परा को सीना-ब-सीना अगली पीढ़ियों तक पहुँचाया जाता है। यही अनुभव संगीत की अन्य विधाओं में भी आत्मसात किया जा सकता है। जैसे भक्ति-संगीत के अन्तर्गत शबद गायन की अलग-अलग शैलियाँ भजन-गायन, कव्वाली, काफी और नात गायन की परम्परा, इसी प्रकार गजल गायन के क्षेत्र में बेगम अख्तर, फरीदा खानम, उस्ताद मेहंदी हसन, गुलाम अली और श्री जगजीत सिंह अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण अलग पहचान रखते है और इनके अनुयायियों की भी विशाल परम्परा समाज में अनुभव की जा सकती है, इसी प्रकार चित्रपट संगीत के अन्तर्गत के.एल.सहगल, तलत महमूद, मन्ना डे, मुकेश, मोहम्मद रफी, किशोर कुमार, सुरैया, श्मशाद बेगम, लता मंगेश्कर, आशा भोसले आदि प्रतिभा सम्पन्न गायक-गायिकाओं ने अपनी-अपनी आवाज़ के गुणों के आधार पर अलग-अलग शैलियाँ स्थापित कर ली है इन सब को अनुकरण करने वाले कला साधकों का भी एक विशाल वर्ग है जो गुरु-शिष्य परम्परा की संजीदगी को धारण करके गाये गये गीतों के लालित्य को स्थापित करने हेतु साधनारत रहते हैं। यहाँ तक कि संगीत वाद्यों के नव निर्माण और मरम्मत के कार्य क्षेत्र में भी उस्ताद-शागिर्द की परम्परा जीवित है।

4.विद्यालयीय संगीत शिक्षा की उन्नति हेतु गुरु-शिष्य परम्परा की उपयोगिता

वर्तमान समय में विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में संगीत कला को ऐच्छिक विषय के रुप में मान्यता दिलवाने का श्रेय विष्णद्वै-पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे तथा उनके शिष्य वर्ग को जाता है। शुरु शुरु में विद्यालयीय संगीत शिक्षण की बागडोर ऐसे लोगों के हाथों में रही जो गुरु शिष्य प्रणाली के अधीन प्रशिक्षित थे। सांगीतिक गुणवत्ता के साथ-साथ वचनबद्धता, साधना-प्रियता, निष्ठा तथा जबाव देही के नैतिक गुण भी उन लोगों में भरपूर मात्रा में रहे जिस वजह से विद्यालयीय संगीत शिक्षा के माध्यम से भी संगीत-कला विकास के मार्ग पर अग्रसर होती रही परन्तु आज के दिन विद्यालयीय संगीत शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नज़र नहीं आ रही है, अन्य कारणों के अलावा आज के विद्यालयीय संगीत शिक्षकों में नैतिक गुणों का ह्रास्य नज़र आ रहा है। साधना की कमी, परिश्रम से अलगाव, वचनबद्धता और जवाबदेही से मुँह फेरना आदि सब व्यैक्तिक दोष विद्यालयीय संगीत शिक्षा के वर्तमान को शोचनीय बनाते हुए भविष्य का निराशाजनक पहलू दिखा रहे है। इस स्थिति से उबरने के लिए भारतीय संगीत की गुरु-शिष्य परम्परा की सांगीतिक विशिष्टाओं के साथ-साथ संगीत गुरुओं के व्यक्तित्व का अध्ययन सहायक सिद्ध हो सकता है भारतीय संगीत की गुरु-शिष्य परम्परा विद्यार्थी की अभिरुचि तथा क्षमता का अन्वेषण, व्यक्तिनिष्ठ संगीत-शिक्षण, संगीत में भावपक्ष और कलापक्ष का सामंजस्य, नियमित पठन-पाठन को प्रोत्साहन, मंच-प्रदर्शन हेतु प्रेरणा, नियमित अभ्यास और संगीत श्रवण हेतु प्रोत्साहन, राग और गायन-शैली की शुद्धता पर ध्यान, शब्दोच्चार और स्वर लगाव में काकु पर विशेष बल, साफ, खुली व सहज आवाज का प्रयोग, बन्दिश शिक्षा पर विशेष बल आदि मनोवैज्ञानिक और तकनीकी तत्वों पर अवलम्बित थी। चरित्र की उच्चता, ईमानदारी तथा समाज के प्रति जवाबदेही-संगीत गुरुओं के व्यक्तित्व का गहना था। संगीत की गुरु-शिष्य परम्परा की उपरोक्त विशेषताओं को यदि विद्यालयीय शिक्षा में पुन: शामिल करने का संकल्प हम सब संगीत जीवी लोग करें तो निश्चित ही वर्तमान कष्टदायक स्थिति को परिवर्तित और परिष्कृत करने में सहायता मिल सकती है।

---

[1] डॉ.एच.एस.डॉली और एच.एस.डिम्पल, मात भाषा की सिखिया,पृ.276 से अनुवादित सामग्री।

[2] गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड,92/3,पृ.921

[3] In Ancient India the educational embodied the method of oral teachings…….in India, oral tradition spreads over a wide range and covers almost all the disciplines of education-from music to medicine, philosophy to the science of politics-Nivedita Singh, Tradition of Hindustani music, P.70 से उद्त और अनुदित।

[4] डॉ.प्रकाशचन्द्र गंगराड़े, हिन्दुओं के रीति-रिवाज तथा मान्यताएँ,पृ.49

[5] आदि ग्रन्थ, आसा दी वार, पृ.462

[6] गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ.27

[7] आदि ग्रंथ, आसा दी वार, पृ.469.

[8] गुरु गीता, सद्गुरु की महिमा, पृ.17/1.

[9] भेंटवार्ता,सुपरिचित ज्योतिषाचार्य दिवंगत पं.दुर्गानन्द जी के सुपुत्र श्री शंभुदत्त शास्त्री(संस्कृत विद्वान) से प्राप्त श्लोक,स्थान-तलवाड़ा,नंगलडैम,पंजाब, 09-07-2012.

[10] डॉ.धर्मेन्द्र कुमार गुप्त तथा विपिन चन्द्र बन्धु, पद्मचन्द्रकोश,पृ.212,270,272.

[11] रामप्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी विश्वकोष,पृ.467.

[12] Monier Williams,Skt.-Eng.Dictionary,P.xz.

[13] छज्जुराम शास्त्री, भगीरथ शास्त्री, निरुक्तम: संस्कृत-हिन्दी टीका द्वयोपेतम्,पृ.72-73

[14] भाई काह्न सिंह नाभा, गुरुशबद रतनाकर-महान कोष,पृ.314 पर उपलब्ध साहित्य का भावानुवाद।

[15] The teacher who nurtures the students is known in indian tradition as guru or acharya, the paragon of model conduct……..Acharya comes from the word 'char' to behave and means-one who trains up others in good behaviour (acharayam grahayati iti acharya).-Nivedita singh, Tradition of Hindustani music.PP.73-74 से उद्धृत।

[16] सम्पादक, सत्यप्रकाश और बलभद्र प्रसाद मिश्र,मानक अंग्रेजी-हिन्दी-कोश,पृ.2379

[17] डॉ.शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.131.

[18] 18. Our music tradition has survived through 'Guru-Shishya' parampara. Guru spends several hours imparting training and teaching the intricacies of the art form to the shishya, which a shishya'with his hard practice and sadhana polishes up to present the most sublime art form. Thus the relation between Guru -Shishaya has been given the utmost importance in Indian music. Even the son- father relation becomes secondary in this art form. - Pandit Debu Chaudhari, Indian Music and Ustad Mushtaq Ali Khan, PPreface.से उद्धृत ।

[19] डॉ.शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.129,130

[20] The music-teaching is totally guru-oriented and guru has a special role to play, he being an indispensable link in the process of communication of tradition. In the whole tradition guru emerges as an institution and the significance of word and importance of listening provides him the supremacy in the process. Being the bearer, preserver and disseminator of knowledge the office of the guru demands the highest veneration. Oral tradition gives due recognition to this unique relationship which is also a communication and at the same time aims at transmuting facts into information, information into knowledge and knowledge into deeper insight.-Nivedita singh, Tradition of Hindustani music,P.72 से उद्धृत।

[21] भेंटवार्ता,पं.गनेश प्रसाद जी शर्मा,214,अजीत नगर, अम्बाला छावनी, गुरु पूर्णिमा का अवसर, तिथि 3.07.2012.

[22] "A teacher can never truly teach unless he is still learning himself. A lamp can never light another lamp unless if continues to burn it's own flame."- Dr.J.S.Walia,School management and pedagogics of education P.64 से उद्धृत।

[23] Thus the relation of the 'Guru-Shishaya' has been given utmost importance in Indian music. Even the Son-father relation becomes secondary in this art form.-Pandit Dabu chaudhari, Indian music and Ustad Mushtaq Ali Khan, preface, से उद्धृत और अनुदित।

[24] डॉ.एस.एन.रातांजन्कर,संगीत शिक्षा की प्राचीन परम्परागत प्रणाली और आधुनिक संस्थागत संगीत-शिक्षण: तुलनात्मक अध्ययन,संगीत अभ्यास अंक 1984,पृ.9,10